शोध मंथन, Impact Factor 6.726 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255 (e): 2454-339X
Vol. X, No.II, pp (855-863) April - June 2019

गढवाल हिमालय के ग्रामीण परिवेश में बीमारी के उपचार एवं रोकथाम में खान–पान की भूमिकाः जनपद टिहरी गढ़वाल के सन्दर्भ में

डॉ0 के.के. बंगवाल
मानव विज्ञान विभाग
एस0आर0टी0 परिसर बादशाहीथौल
टिहरी गढ़वाल,उत्तराखण्ड
E-mail: drkkbangwal@gmail.com

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र गढ़वाल हिमालय ग्रामीण परिवेश में बीमारी के उपचार एवं रोकथाम में खान–पान की भूमिका से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत खाद्य एवं पेय पदार्थों का उपयोग, भोजन बनाने के तरीके, भोजन सम्बन्धित लोक विश्वास जैसे भोजन की प्रवृत्ति,बीमारी के दौरान खाये जाने एवं न खाये जाने वाले खाद्य एवं पेय पदार्थ आदि को सम्मिलित किया गया है। यह देखा गया है कि गढ़वाल हिमालय के लोग बीमारी के कारण के अनुरूप गर्म एवं ठन्डे प्रवृत्ति के भोजनों का सेवन करते हैं, यदि बीमारी का कारण गर्म है तो ठन्डे प्रवृत्ति के भोज्य एवं पेय पदार्थों का सेवन बीमारी के उपचार एवं रोकथाम में लाभकारी माना जाता है। इस प्रकार लोग अपने पारम्परिक लोक विश्वासों के अनुरूप स्वस्थ जीवन यापन करने के लिए बीमारी के उपचार एवं रोकथाम में खान–पान में परहेज करते हैं।

मुख्य शब्दः *पारम्परिक, लोकविश्वास, बीमारी, उपचार, रोकथाम, प्रवृत्ति, खान–पान।*

प्रस्तावना

स्वस्थ जीवन यापन करने के लिए पोषित भोजन का होना आवश्यक होता है। पोषक तत्वों से भरपूर भोजन शरीर के महत्वपूर्ण कार्यों को करने के लिए उत्तरदायी होता है। सामाजिक, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक कार्यों को सम्पन्न करने के लिए पोषित भोजन की आवश्यकता होती है। शरीर के समुचित विकास के लिए भोजन में पोषकता के साथ सांस्कृतिक अवधारणा का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। लोगों का भोजन के प्रति इतना अटूट विश्वास होता है कि पोषण को सुधारने के लिए बिना किसी सांस्कृतिक परिवेश के उनकी पारंपरिक भोजन या खान–पान सम्बन्धी आदतों को बदलना सम्भव नहीं है। पोशण का सम्बन्ध भोजन और खान–पान के साामाजिक–सांस्कृतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक आदि पक्षों से भी है। भोजन में विविधता व्यक्तिगत पसन्द और नापसन्द, भोज्य पदार्थों की उपलब्धता, व्यक्तिगत आदत आदि के कारणों

से भी देखने को मिलती है। लोग सामान्य जीवन यापन के साथ प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने आस पास में उपलब्ध खाद्य सामग्री का उपयोग करते हैं।

खान–पान से सम्बन्धित विभिन्न लेखकों ने विभिन्न पक्षों पर लेखन कार्य किया है जिनमें से कुछ के कार्यें को संक्षिप्त में मार्ग दर्शक के रूप में वर्णित किया गया है। जेलिफ और बेनेट (1962) ने पोषण एवं समुदाय की स्थिति, ग्रीन (1970,1980) ने कुपोषण का व्यवहार व समाज पर प्रभाव के साथ–साथ जैविक पक्षों से सम्बन्धित शारीरिक विकास, गोपालदास एवं श्रीनिवासन (1975) ने मध्यप्रदेश के ग्रामीण स्कूली बच्चों के स्वास्थ्य एवं पोषण, डेन(1976) ने भोजन, पोषण व समाज के बीच सम्बन्ध, हास (1977) ने भोजन तथा अनुकूलता के जैव–सांस्कृतिक स्वरूप, हास एवं पिलेटियर (1981) ने पोषण मानव अनुकूलन को किस प्रकार प्रभावित करता है तथा भोजन कार्यिकी एवं जैविकी लक्षणों के लिए महत्वपूर्णता, मोंटगोमेरी (1979) ने आहार में पारस्थितिकीय अनुकूलताओं के साथ स्वास्थ्य एवं वातावरणीय प्रभावों आदि को दर्शाया है। जोरेम (1980), पोपकिन (1980), ट्रिप (1981), मेसर (1982,1984), पेल्टो (1983), ओकरे (1983), बंगवाल(2000) आदि ने भोजन एवं आहार से सम्बन्धित सामाजिक–सांस्कृतिक, आर्थिक परिवेश, भोजन की प्रवृत्ति, भोजन का उपयोग एवं अनुकूलनता, लोक आस्था एवं विश्वास, पोषण, बीमारी एवं भोजन का सम्बन्ध आदि में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से अध्ययन किया है।

प्रस्तुत शोध पत्र गढ़वाल हिमालय में बीमारी के उपचार व रोकथाम में भोजन की भूमिका के अन्तर्गत खान–पान के प्रति लोक विश्वास, भोजन बनाने की विधि, बीमारी को रोकने व बीमारी के दौरान खान–पान में परहेज आदि को दर्शाना मुख्य उद्देश्य है। यह अध्ययन गढ़वाल हिमालय के जनपद टिहरी गढ़वाल के ग्रामीण परिवेश से सम्बन्धित है। इस अध्ययन के लिए साक्षात्कार व अवलोकन शोध प्रविधियों का उपयोग विशेषरूप से किया गया है।

खान–पान पर उस क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति व भोज्य पदार्थों की उपलब्धता का प्रभाव पड़ता है जिसके फलस्वरू पोषण पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। निःसंदेह ही किसी क्षेत्र विशेष के खान–पान का सीधा सम्बन्ध वहाँ की उपलब्ध कृषि एवं जंगल से प्राप्त चीजों से होता है। इस जनपद की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण परिवेश में जीवन यापान करती है। जिनके पास कृषि योग्य भूमि तो है किन्तु अधिकांश असिंचित है। यहां के ग्रामीण क्षेत्रों में मुख्यरूप से अनाजों में *कोदा, झंगोरा, गेहूँ, जौ, धान, ऊवा, जौ, ओगल–फाफर* आदि दलहनों में *गहथ, मसूर, उड़द, तोर, नौरंगी, राजमा, छेमी, सोयाबीन, भट्ट* आदि तिलहन में सरसों, तिल तथा आलू आदि की खेती विशेषरुप से की जाती है तथा इस क्षेत्र में *तिमला, बेडू, किनगोड़, हिंसर, करोंदा उमरा, खैंणा* आदि जंगली फल उपलब्ध होते है तथा इनसे समय–समय पर विभिन्न प्रकार के पकवान बनाये जाते हैं। इस क्षेत्र में *भात ,साग, दाल, झंगोरा, तस्मै, खिचड़ी, बाड़ी, रोटी, कोल्दी, ठगरोटी, ढ़बाड़ी रोटी, रलौ रोटी, भरीं रोटी, स्वाली, पल्यो, काफली, थिंचवाणी, धापडू, बिरंजी, मीठाभात, सात्तू* आदि पारम्परिक पकवान प्रचलित हैं।

शराब एवं मांस का प्रचलन पूर्वकाल से चला आ रहा है। ऊँचाई वाले गाँवों में घाटी वाले गाँवों की अपेक्षा शराब एवं मांस का सेवन अधिक किया जाता है। गाँवों में देवी–देवताओं

व भूत–प्रेत के पूजन में भेड़–बकरियों की बलि देने का रिवाज रहा है। कुछ देवताओ के पूजन में दी गयी बकरी की बली के मांस का हिस्सा प्रत्येक परिवार को प्रसाद के रुप में दिया जाता है किन्तु कुछ का नहीं। वर्तमान में बली प्रथा का प्रचलन कम होता जा रहा है। इस क्षेत्र में समय–समय पर पकाये जाने वाले पारंपरिक पकवान बनाने का तरीका, बीमारी के दौरान परहेज आदि का विवरण निम्न प्रकार हैं –

पारम्परिक पकवान – गढ़वाल हिमालय के ग्रामीण परिवेश में सुबह, दोपहर एवं रात्रि को भोजन किया जाता है। सुबह के भोजन को नकोल/कलेऊ, दोपहर के भोजन को दोफरी कहा जाता है। कलेऊ में रोटी, सब्जी, चाय, दूध आदि में से तथा दोफरी में दाल, चावल, झंगोरा आदि में से तथा रात्रि के भोजन में रोटी, सब्जी विशेषरूप से खाया जाता है। कुछ पारम्परिक पकवान कभी–कभी एवं विशेष अवसरों पर पकाये जाते हैं जिनमें से कुछ निम्न प्रकार से हैं–

सिवैं–यह गेहॅ के आटे को गूँदकर आवष्यकतानुसार गोली बनाकर दोनों हथेलियों से मथकर सिवांई की तरह बनाकर सुखाया जाता है। जिसे घी के साथ भूनकर नमक–मिर्च के साथ पकाया जाता है। सिवैं को सुबह नाष्ते या दोपहर के बाद खाया जाता है।

भुटवां भात –बासी भात(पके चावल) नमक–मिर्च मिलाकर घी या तेल में जीरा व झखिया के साथ फ्राई करके पकाया जाता है जिसे भुटवां भात कहा जाता है। जब कभी भुटवां भात खाने की इच्छा होती है तो लोग अधिक मात्रा में भात बनाते हैं और जिसे बासी होने के बाद पाकाया जाता है।

बाड़ी –यह उबलते हुए पानी में कोदे के आटे को धीरे–धीरे डालते हुए लकड़ी के डण्डे से घुमाया जाता है। जिसे बाड़ी के नाम से जाना जाता है। यह हलवे की तरह एवं बिना नमक–मिर्च व मीठे का बना होता है जिसे लोग पल्यो (मट्ठ से बनी कड़ी), चौंसा (पिसी हुई उड़द की दाल से बना पकवान) आरि के साथ खाया जाता है। पूर्वकाल में इस पकवान को लोग अक्सर खाया करते थे, किन्तु वर्तमान में इसे शौकिया तौर पर खाया जाता है। नवयुवकों की अपेक्षा बुजुर्ग इसे अधिक पसन्द करते हैं।

फाणा– यह गहथ की भागी दाल को सिलबट्टे में पीसकर इसमें नमक व मसाले मिलाकर पानी में घोलकर छौंका जाता है जिसे फाणू या फाणा कहा जाता है। इसे दाल के स्थान पर उपयोग किया जाता है। यह माना जाता है कि लोहे की कढ़ाई पर पकाया गया फाणू स्वादिष्ट व स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम होता है। नयी पीढ़ी की अपेक्षा बुजुर्ग लोग बाड़ी को फाणा के साथ बड़े चाव से खाते हैं।

चौंसा – यह उड़द की दाल का बनाया जाता है। उड़द की दाल को पीसकर आटे की तरह बनाया जाता है और इसको भूनकर या पानी में घोलकर घी या तेल के साथ छौंककर बनाया जाता है इस साग को चौंसा या तौंसा कहा जाता है।

झोल– उबले आलू को मसलकर बनाये जाने वाले साग को आलू का झोल कहा जाता है। इसे विशेषरूप से भात, झंगोरा व स्वाली के साथ खाया जाता है।

चरण	
प्रथम	
द्वितीय	
तृतीय	
चतुर्थ	
पंचम	
छठा	
सातवां	

पल्यो एवं छंचेड़ी – मट्ठे के साथ कुछ मात्रा में गेहूं का आटा एवं नमक–मिर्च–मसाले मिलाकर पकाया जाता है जिसे पयो कहा जाता है। इसे दाल के स्थान पर उपयोग में लाया जाता है। छंचेरी चावल एवं झंगोरा की बनायी जाती है। जिसे क्रमशः चौलू छंचेरी एवं झंगोरा छंचेरी के नाम से जाना जाता है। मट्ठे के साथ मसाले, नमक–मिर्च, चावल या झंगोरा को पकाने पर छंचेरी कहा जाता है।

परसाद – गेहूँ के आटे को घी के साथ भूना जाता है और इसमें खौलते गुड़ का पानी डालते समय ठंडे की सहायता से घुमाया जाता है। इसे अर्धठोस अवस्था तक पकाया जाता है जिसे परसाद कहा जाता है । इसे संस्कारिक क्रियाकलापों के दौरान विशेषरूप से बनाने की परम्परा रही किन्तु जब इसे देवी–देवता के निमित्त बनाया जाता है तो इसे श्रिणी कहा जाता है।

आरसा – चावलों को भिगोकर ओखली में कूदकर आटा बनाया जाता है और एक बड़े बर्तन में पारम्परिक नाप तोल से पानी के साथ गुड़ उबाला जाता है। आटा एवं तैयार गुड़ के पानी को परसाद/हलवे की तरह पकाया जाता है जिसे कसार कहा जाता है। कसार के गोले बनाकर तेल के साथ तला जाता है जिसे आरसा कहा जाता है।

रोट – गेहूँ के आटे को गुड़ के पानी के साथ मथा जाता है और इसे घी के साथ परांठों की तरह पकाया जाता है। जब इनको स्वयं के खाने के लिए बनाया जाता है तो यह पहले होते हैं एवं मीठी रोटी के नाम से जाना जाता है, किन्तु जब देवी–देवताओं के पूजन के लिए बनाया जाता है इसे रोट कहा जाता है। यह रोटी की अपेक्ष मोटे एवं तो इनकी संख्या निश्चित तथा पारंपरिक नाप–तोल से बनाये जाते हैं जैसे सवा सेर, सवा पाथा इत्यादि।

भटवाणी – भट्ट (सोयाबीन की किस्म) को सिलबट्टे में पीसकर पाउडर बनाया जाता है तथा इसे पानी में भिगोकर या भूनकर लोहे की कढ़ाई में पकाया जाता है जिसे दाल के स्थान पर उपयोग में लाया जाता है। यह विशेषरूप से काले भट्ट का बनाया जाता है।

गुलगुला– आटे को गुड़ या चीनी के पानी में भिगोया जाता है और इसके इन गोले बनाकर तेल या घी के साथ तला जाता है। जिसे उत्सव, त्योहार के अवसर बनाने तथा विवाहित लड़कियों को सुराल के लिए भेंट करने की परंपरा भी प्रचलित रही है।

थिच्वांणी – यह आलू एवं मूली को सिलबट्टे मे कूटकर बनाया जाता है जिसे क्रमशः आलू थिच्वांणी एवं मूली थिच्वांणी के नाम से जाना जाता है। इसे अधिकांशतः जबंग (चावल) के साथ खाया जाता है।

स्वांली – यह तेल में तलकर बनायी जाने वाली छोटी रोटी होती है। यह मीठे के साथ बनाने पर मीठी स्वांली कहलाती है। जब गहथ, मसूर, तोर आदि की दाल को उबाल कर सिलबट्टे में पीसकर, लुग्दी को रोटी के अन्दर भरा जाता है तो इसे उक्त दल के नाम की भरी स्वांली के नाम से जाना जाता है जैसे –गहथ की भरी स्वांली आदि।

काफली – यह राई, पालक, सरसों, कण्डाली, चौलाई इत्यादि हरी सब्जियों की बनायी जाती है। किसी भी हरी सब्जी को पकाकर, मसलकर या सिलबट्टे में पीसकर छौंका जाता है। पकाते

समय इसमें आटा भी डाला जाता है, वर्तमान में आटे के स्थान पर बेसन का प्रयोग किया जाता है। स्वादिष्ट बनाने के लिए इसे लोहे की कढ़ाई में पकाया जाता है।

तस्मै – चावलों को दूध के साथ पकाया जाता है और इसमें गुड़ या चीनी डालकर मीठा बनाया जाता है। तो इसे तस्मै कहा जाता है।

सात्तू – गेहूँ को भूनकर बनाये जाने वाले आटे को सात्तू कहा जाता है। लोग इस आटे को पारंपरिक चक्की जांदरा या घराट में बनाते हैं किन्तु वर्तमान में बिजली वाली चक्की में भी पीस कर बनाया जाता है। बुजुर्ग लोगों का विश्वास है कि बिजली की चक्की में पीसने पर इसके पोशक तत्व समाप्त हो जाते हैं। लोग सात्तू में गुड़ व चीनी मिलाकर खातै हैं।

भुन्नी– भेड़–बकरी के अन्तरांगों जैसे छोटी आंत, बड़ी आंत, जमा हुआ रक्त, फेफड़े आदि को धुलकर छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर पकाया जाता है।

गुड़ लम्फा–खौलते हुए गुड़ के पानी में गेहूं का आटा डालकर पकाया जाता है जिसे कि बिना भूने हुए एवं पतला बनाया जाता है।

राबड़ी–खौलते हुए दूध में गेहूं का आटा डालकर पकाय जाता है। इसे अर्द्ध ठोस अवस्था तक पकाया जाता है तथा स्वादिष्ट बनाने के लिए इसमें घी भी डाला जाता है ।

रोटाना–गुड़ के पानी के साथ गेहूं का आटा गूथकर लकड़ी के रोटाना के सांचों के बीच में रखकर मथने के पश्चात तेल में तलकर पकाया जाता है।

बड़ील– बिना छिलके वाली मसूर की दाल को पीसकर आटा बनाया जाता है। मसूर की दाल का आटा पानी में नमक–मिर्च के साथ पकाकर घोल बनाया जाता है जिसे किसी चौड़े बर्तन में ठन्डा किया जाता है तत्पश्चात इसे तेल के साथ छौंका जाता है।

तिलोठा– चावल के साथ आधे पिसे हुए तिल मिलाकर नमक–मिर्च के साथ खिचड़ी की तरह पकाय जाता है।

खिचड़ी–दाल–चावल को नमक–मिर्च के साथ पकाकर बनाया जाता है। यह विशेषरूप से मूंग, मलका,अरहर की दाल की बनायी जाती है तथा कभी–कभी लोबिया की दाल की भी बनायी जाती है।

पापड़ी–चावल के आटे का घोल बनाया जाता है और चौड़े बर्तन में ढ़क्कन रखकर पानी को खौलाते हैं या कुछ चीज पकाने के लिए रख देते हैं और इस ढ़क्कन में इस आटे के घोल की रोटी की तरह बनाया जाता है जो कि भाप से पक जाती हैं। अन्य अवसरों के अलावा मेले–त्योहारों के अवसर पर इन्हे तलकर खाया जाता है।

उपरोक्त पकवान कभी–कभी बनाये जाते है। जिनको इस क्षेत्र की परम्परा के अनुसार बनाया जाता है तथा बीमारावस्था में तथा बीमारी पर नियंत्रण पाने के लिए परहेज किया जाता है। यह परहेज खान–पान के प्रति स्थानीय लोक विश्वासों व अभ्यासों के आधार पर किया जाता है जिससे कि स्वस्थ जीवन यापन हो सके।

प्रसव से पूर्व एवं बाद में खान–पान का परहेज– सामान्यताया लोगों का विष्वास है कि यदि प्रसव से पूर्व एवं पश्चात खान–पान का परहेज न किया गया तो प्रसव के दौरान एवं बाद

में विभिन्न समस्याओं व बीमारियों का सामना करना पड़ सकता है। प्रसव के पूर्व आरसा, गहथ या मसूर की भरी रोटी, पिंडालू, तैडू, बैंगन की सब्जी, कच्चा नारियल, बुखणा आदि खाद्य पदार्थों का सेवन नहीं किया जाता है। यह माना जाता है कि इन भोज्य पदार्थों के सेवन करने से बच्चे एवं महिला के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

प्रसव के पश्चात महिला लगभग एक माह तक खट्टी चीजें जैसे नीबूं, पयो, छंछेरी, चटनी, अमचूर आदि हरी सब्जियाँ, कच्चा घी, कोदे की रोटी, आरसा, अधिक नमकीन चीजें आदि नहीं खायी जाती हैं। लोगों का विश्वास है कि खट्टी चीजें खाने पर बच्चे एवं माँ को बुखार व पेट दर्द हो सकता है तथा ठन्डा पानी, कच्चा घी, नारियल, हरी सब्जी आदि के सेवन से खांसी–जुकाम होने की सम्भावना रहती है। अधिक नमकीन खाद्य पदार्थों के सेवन से महिला की योनि पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए लोग बच्चे के जन्म के पॉच से सात दिन तक नमकीन खाद्य पदार्थों का सेवन करने मे परहेज करते हैं। जन्म के दिन महिला के मुख्यरुप से परसाद (गुड़ का हलवा) खाने को दिया जाता है। इस पकवान को तीन–चार दिन तक कम से कम दिन में एक बार खाना उत्तम माना जाता है। तत्पश्चात कम नमक वाली खिचड़ी को बरीयता दी जाती है। यह भी माना जाता है कि प्रसव के बाद महिला कमजोर हो जाती है तथा कमजोरी को दूर करने के लिए ताकतवर भोजनों की आवश्यकता होती है। वर्तमान में छ्वारा, बादाम, काजू, किसमिस आदि का सेवन भी किया जाता है।

बीमारी के दौरान खान–पान में परहेज– मुख्यरूप से बीमारी के तीन कारण प्राकृतिक, अलौकिक व मानवीय कारक माने जाते हैं। बीमारी का कारण ठंड हो तो गर्म प्रवृत्ति के भोजन तथा बीमारी गर्म के कारण होती है तो ठंडी प्रवृत्ति के भोजनों का सेवन किया जाता है। गर्म के कारण बीमारी होने पर गर्म प्रवृत्ति के भोजन जैसे सात्तू, झंगोरा, मीठाभात, पल्यो, परसाद, आरसा, छंछेरी, स्वाली, तथा ठंड के कारण बीमारी होने पर ठंडा प्रवृत्ति के भोजन जैसे भात , चौंसा, थिच्वांणी, काफली, हरी सब्जियाँ आदि भोज्य पदार्थों का सेवन नहीं किया जाता है। बीमारी के दौरान खिचड़ी खाने को वरीयता दी जाती है। सामान्यतया बीमारी के दौरान खट्टे–मीठे, घी–तेलीय, ठंडे–गर्म प्रवृत्ति के भोजन नहीं खाये जाते हैं अर्थात बीमारी के दौरान भोज्य पदार्थों का परहेज वात, पित्त और कफ के अनुसार किया जाता है।

व्रत के दौरान खान–पान का सेवन– लोग देवी–देवता, त्यौहार, पाठ–पूजा, ग्रह–नक्षत्रों के निमित्त क्षेत्र की सांस्कृतिक विचाराधारा के अनुरुप व्रत या उपवास रखते हैं। व्रत के दिन विशेषरुप से मांस, मदिरा, लहसून, प्याज एवं मांसल प्रवृत्ति के भोजन का सेवन नहीं किया जाता है।

इस दिन घर की सफाई के साथ–साथ स्वयं की स्वच्छता जैसे स्नान आदि पर भी ध्यान दिया जाता है। जिस संबंध में व्रत रखा जाता है, उससे संबंधित देवी–देवता की पूजा–अर्चना की जाती है तथा परम्परा के अनुसार भोज्य पदार्थों का सेवन किया जाता है। इस दिन सम्बन्धित ग्रह या देवी–देवता के नाम पूड़ी (देवी–देवता के निमित चढ़ाया जाने वाला भोजन) है। सोमवार से लेकर रविवार तक के व्रत राशि की ग्रह दशा के अनुरुप व्रत रखे जाते हैं।

सामान्यतया उपवास के दौरन मांस, मदिरा, मांसल प्रवृत्ति के भोजन जैसे लहसून, प्याज, मषरुम आदि का सेवन नहीं किया जाता है। इसके अलावा मसूर, शनिवार के व्रत को छोड़कर उड़द की दाल इत्यादि का सेवन नही किया जाता है।

सोमवार के व्रत के दिन नमकीन व मीठे भोजन, मंगलवार के व्रत के दिन मीठा भोजन, बुधवार के व्रत के दिन मीठा व नमकीन भोजन, बृहस्पतिवार को पीला, मीठा भोजन, शुक्रवार के दिन खट्टे भोज्य पदार्थों को छोड़कर अन्य नमकीन व मीठे भोजन, शनिवार के व्रत में उड़द की खिचड़ी तथा रविवार के व्रत के दिन मीठे भोजन का सेवन किया जाता है। इस प्रकार व्रत के दौरान खान–पान का सेवन व्रत से संबंधित धारणा, लोक विश्वास व परंपरा के अनुरुप किया जाता है।

बीमारी के रोकथाम में खान–पान की भूमिका– यह देखा गया है कि बीमारी होने से पूर्व तथा बीमारी के दौरान खान–पान में परहेज किया जाता है। खान–पान का परहेज वातावरणीय परिस्थितियों के अनुरूप तथा खान–पान की प्रवृत्ति पर निर्भर होता है। बीमारी के मुख्य कारण प्रकृतिक, अलौकिक एवं मानवीय कारक माने जाते हैं जिसमें से प्राकृतिक कारक के अन्तर्गत वात, पित्त एवं कफ भी आते हैं। यदि बीमारी वात, पित्त एवं कफ के कारण है तो इस प्रकार की प्रवृत्ति वाले खान–पान का परहेज किया जाता है अन्यथा बीमारी विकृत रूप धारण कर सकती है। सामान्यतया अधिक ठन्डे, गर्म व कफ प्रवृत्ति वाले खाद्य एवं पेय पदार्थों का सेवन कम मात्रा में किया जाता है जिससे बीमार होने से बचा जा सके। यह भी देखा गया है कि गुड़ से बनी व तेलीय चीजें, अधिक नमकीन चीजें आदि गर्म प्रवृत्ति के मानी जाती हैं इसी प्रकार ठन्डी एवं कफ युक्त चीजें अधिक मात्रा में खाने से स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायें होती हैं जिसके कारण इस प्रकार के खान–पान पर परहेज किया जाता है।

खाद्य एवं पेय पदार्थों की प्रवृत्ति :– लोगों का मानना है कि सामान्यतया खाद्य एवं पेय पदार्थ गरम एवं ठंडी प्रवृत्ति के होते हैं। ये लोग आरसा, सात्तू, मीठा भात, झंगोरा, रोटी, बाड़ी, पका हुआ अण्डा, गथवांणी, रोट, स्वाली, छंचेरी, झंगोरा की तस्मै, गुड़ की सूजी, परसाद, मांस बकरे एवं मुर्गे का, भुन्नी, गाय का घी, चना, शराब, चना आदि खाद्य एवं पेय को गरम प्रवृत्ति का मानते हैं। जबंग, आलू एवं मूली की थिच्वांणी, चौंसा, काफली, राजमा, उड़द, राई–पालक की सब्जी, अधिकांश फल एवं सब्जियाँ, भैंस का घी आदि खाद्य पदार्थों को ठंडी प्रवृत्ति का माना जाता है। यह लोग शीतकाल के दौरान गर्म प्रवृत्ति के एवं ग्रीष्मकाल के दौरान ठन्डे प्रवृत्ति के खाद्य एवं पेय पदार्थों का सेवन करते हैं।

निष्कर्ष

लोग भोजन के प्रति लोक विश्वासों को अपनाने हुए हैं। यह अपनी परम्परा के अनुरूप समय–समय पर विभिन्न प्रकार के पकवानों का सेवन करते हैं। बीमारी एवं वातावरण आदि के अनुरुप खाद्य एवं पेय पदार्थों का सेवन करते हैं। यदि बीमारी का कारण गर्मी है या बीमारी से शरीर में गर्मी होती है तो ठंडे प्रवृत्ति तथा बीमारी का कारण ठंड हो तो गरम प्रवृत्ति के खाद्य एवं पेय पदार्थों का सेवन करने की परंपरा है। इस प्रकार बीमारी तथा खान–पान की प्रवृत्ति

वात, पित्त एवं कफ को दर्शाता है।

ये लोग स्थानीय उत्पादों के अलावा बाजार पर भी निर्भर हैं। क्योंकि वर्तमान में लोगों का कृषि के प्रति रूझान कम होता जा रहा है। शीतकाल के दौरान गर्म तथा ग्रीष्मकाल के दौरान ठन्डे प्रवृत्ति वाले भोज्य पदार्थों का सेवन किया जाता है। मेले–त्योहारों में पूड़ी, पकोड़ी विशेषरूप से उड़द की दाल की, हलवा, तस्मै आदि पकवान बनाने की परम्परा रही है। साथ ही विभिन्न अवसरों यह कुछ लोग मांस–मदिरा का सेवन करते हैं जो कि इनकी तामसी प्रवृत्ति को दर्शाता है। मांस–मदीरा का सेवन घाटी वाले क्षेत्रों की अपेक्षा ऊँचाई वाले क्षेत्रों में निवास करने वालों में अधिक है। ये लोग मौसम के अनुरुप खान–पान में बदलाव कर सेवन करने की परम्परा भी देखने को मिलती है। वर्तमान में प्रचलित खाद्य पदार्थों के प्रति गतिशील हो रहे हैं जिससे पारंपरिक खान–पान के प्रति रुझान कम होता जा रहा है। लोग स्वस्थ जीवन यापन करने के लिए पारम्परिक ज्ञान का उपयोग करते हुए बीमारी के उपचार एवं रोकथाम के लिए खान–पान में परहेज करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. ग्रीन, एल.एस. (1977) *मैलन्यूट्रिशन बिहेविअर एण्ड सोशियल आर्गेनाईजेशन*, एकेडेमिक, न्यूयार्क।
2. ग्रीन, एल.एस. एण्ड जोहंसटन, एफ.(1980) *सोसियल एण्ड बायोलोजिकल प्रेडिक्टर ऑफ न्यूट्रिशनल स्टेटश फिजिकल ग्रोथ एण्ड न्यूरोलोजिकल डेवलपमेण्ट*, ऐकेडिमिक, न्यूयार्क
3. गोपालदास, टी. एवं श्रीनिवासन एन. (1975) *प्रोजेक्ट पोषक : एन इन्टेग्रेटेड हेल्थ न्यूट्रिशनकृ*, वाल्यूम 1–2, केयर इण्डिया, नई दिल्ली।
4. जेलिफ, डी.बी. (1967) *द ऐसेसमेंट ऑफ द न्यूट्रिशन एण्ड स्टेटस ऑफ द कान्यूनिटी*, डब्ल्यू.एच.ओ. मोनोग्राफ सीरिज–53।
5. जेरोम, एन.डब्ल्यू. आदि (1980) *न्यूट्रिशनल एन्थ्रोपोलोजी,* प्लेजेन्टविले, रेडग्रेव, न्यूयार्क
6. ट्रिप, आर. (1981) फारमर्स एण्ड ट्रेडर्स, *सम इकोनोमिक डिटरमिनेन्टस ऑफ न्यूट्रिशनल स्टेटस इन नार्थन घाना,* जर्नल ट्रोप. पेडिए. 27, **15–22**।
7. पॉपकिन, बी. (1980) *टाइम एलोकेशन ऑफ मदर एण्ड चाइल्ड न्यूट्रिशन*, इको. फूड, न्यूट्रिशन 9, **1–14**।
8. पेल्टो, जी.एच.एण्ड पेल्टो पी.जे. (1983) *डाइट एण्ड डीलोकेलाइजेशन : डाइटरी चेन्ज, जर्नल इन्टर डिस. हिस्ट.* 14, **507–528**।
9. पेल्टो पी.जे. पेल्टो,जी.एच. (1983) *कल्चर, न्यूट्रिशन एण्ड हेल्थ, इन एन्थ्रोपोलोजी ऑफ मेडिसिन फ्राम कल्चरकृएडिटेड बाई एल.रोमानुसी* आदि प्रिगर,न्यूयार्क 221–230।
10. बंगवाल, के.के. (2000) चमोली गढ़वाल के भोटियाओं में परंपरागत चिकित्सा प्रणाली के विश्वास, अभ्यास एवं बदलती दिशाएँ, शोध ग्रन्थ, मानव विज्ञान विभाग, हे.न.ब.ग. वि.वि. श्रीनगर गढ़वाल।

11. मेसर,ई. (1982) *एन्थ्रोपोलोजिकल परस्पेक्टिव आन डाइट, एनुवल रिव्यू एन्थ्रोपोलोजी*–13, **205–49** ।
12. मेसर,ई. (1984) *सोसियो कल्चरल आसपेक्ट आफ इनटेक एण्ड विहेवियरल रिस्पान्स टु न्यूट्रिशन, एडिटेड इन न्यूट्रिशन एण्ड विहेवियरः ह्यूमन न्यूट्रिशन,*बाई जे. गेलर 5: **417–471** ।
13. मोटंगोमेरी, ई. (1977) *एन्थ्रोपोलोजिकल कन्ट्रिब्यूशन टू द स्टडी ऑफ फूड रिलेटेड कल्चरल वैरिविलीटी, इन ह्यूमन न्यूट्रिशन एडिटेड बाई एस. मारगन,* वेस्टपोर्ट, कॉन. एवि.2: **34–50** ।
14. हास, जे.डी. एण्ड हैरिसन जी.जी. (1977) *न्यूट्रिशनल एन्थ्रोपोलोजी एण्ड बायोलोजिकल एडप्टेशन, एन्चुल रिव्यू एन्थ्रोपोलोजी*–4, **117–135** ।
15. हास, जे.डी. एण्ड हैरिसन जी.जी. (1977) *न्यूट्रिशनल एन्थ्रोपोलोजी एण्ड बायोलोजिकल एडप्टेशन, एनुवल रिव्यू एन्थ्रोपोलोजी*–6, **69–135** ।